International Journal of Advanced Research and Development
ISSN: 2455-4030
Impact Factor: RJIF 5.24
www.advancedjournal.com
Volume 3; Issue 1; January 2018; Page No. 652-654

गठबन्धन की राजनीति का उत्तर–प्रदेश की शासन व्यवस्था पर प्रभाव

आशुतोष शर्मा
सहा0 प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, राजकीय महाविद्यालय, देवगनपुरा पनवाडी, महोबा, उत्तर प्रदेश, भारत।

सारांश
राजनीति विज्ञान में गठबन्धन पद को परिभाषित करते हुए रोजर स्क्रटन ने लिखा है कि– 'विभिन्न दलों या राजनीति पहचान रखने वाले प्रमुख व्यक्तियों का आपसी समझौता गठबन्धन कहलाता है। गठबन्धन सरकार की स्थापना दो या दो से अधिक राजनीतिक लोक निर्वाचित उम्मीदवारों के समूह अन्य किसी दल के निर्वाचित उम्मीदवारों के समर्थन से होती है।' ऐसा सदन में बहुमत जुटाने के लिया किया जाता है। गठबन्धन की आवश्यकता तब महसूस होती है जब व्यवस्थापिका में किसी एक दल राजनीतिक दल को स्पष्ट बहुमत नहीं मिलता। गठबन्धन निर्वाचन से पहले या बाद में ऐसे दलों के मध्य होता है जो कार्यक्रम एवं नीतियों में समानता रखते हैं। गठबन्धन सरकारों के कारण ही विभिन्न धर्म, जाति एवं सम्प्रदाय के राजनीतिज्ञ एक मंच पर कार्य करतें है जिससे देश में एक धर्म निरपेक्ष ताकत का जन्म होता है। गठबन्धन सरकार की उत्पत्ति विश्व–स्तर पर व्यापक रुप से हुई है। उसकी प्रकृति और कारक तत्व व उसकी स्थिरता प्रत्येक देश की राजनीतिक घटना चक्रों पर टिकी हुई है। इसकी उत्पत्ति के निर्माणकारी तत्वों का अध्ययन करने यह विदित होता है कि प्रत्येक देश में यह छोटे और बड़े स्तर पर लगभग एक जैसे है। जब किसी देश की जनता को ऐसा प्रतीत होता है कि बहुमत आपत्ति शासन प्रणाली उनके हितों की अवेहलना कर रही है या एक ही राजनीतिक दल अपनी निरंकुशता को बढ़ावा देता आ रहा है तथा अपने दायित्वों की तरफ से वे परवाह है तब वह विकल्पों को खोजती है। ऐसे में जनता का किसी एक राजनीतिक दल पर विश्वास नहीं रह पाता। मतदाता जब विकल्प की खोज करता है तब गठबन्धन की प्रक्रिया प्रारम्भ होती है। उत्तर–प्रदेश की राजनीति से केंन्द्र की राजनीति भी प्रभावित होती है।

मूल शब्द : मतदाता, मध्यावधि, गठबन्धन सरकारें।

प्रस्तावना

भारतीय राजनीति में उथल–पुथल लाने की सबसे अधिक सम्भावनायें भी उत्तर–प्रदेश की राजनीति में ही निहित है। उत्तर–प्रदेश भारत का लघु संस्करण तथा यहॉ की राजनीति भी भयंकर विरोधाभासों की जन्मस्थली कही जा सकती है चतुर्थ आम चुनाव वर्ष 1967 में हुई यही वह समय रहा जब उत्तर–प्रदेश की राजनीति में गठबन्धन की राजनीति का प्रादर्भाव हुआ। उत्तर–प्रदेश में प्रथम बार कांग्रेस पार्टी को भारी नुकसान उठाना पड़ा किन्तु दल–बदल येन–केन– प्रकारेण वह किसी तरह से सरकार बनाने में कामयाब तो हो गयी वह भी मात्र 18 दिनों तक चलकर गीले कारतूस की तरफ वे आवाज हो गयी तब उत्तर– प्रदेश में पहली बार गैर–कांग्रेसी संविद सरकार बनी थी जिसका नेतृत्व उस समय चौधरी चरण सिंह ने किया था। गठबन्धन सरकारों का दौर प्रारम्भ हो चुका है। क्षेत्रीय दलो के उभरते स्वरुप से वर्तमान में तेजी सी आयी है। यद्यपि कांग्रेस तथा भारतीय जनता पार्टी देश में बड़े दल है तथापि आम चुनावों में इनमें से किसी भी दल के इतने सांसद चुनाव में व विधायक जीतकर नहीं आते जिससे अपने बलबूतें पर सरकार बना सकें। प्रदेशों में क्षेत्रीय दलों का बोलवाला है।

उत्तर–प्रदेश में मुलायम सिंह की समाजवादी पार्टी, मायावती की बहुजन समाजपार्टी व भारतीय जनता पार्टी सहित कांग्रेस के मध्य सत्ता प्राप्ति की होड़ रहती है जिससे पिछले कई चुनावों से यहॉ त्रिशंकु विधान सभा का निर्माण होता रहा है जिससे कोई एक दल अपने बलबूते पर सरकार बनाने की स्थिति में नहीं आ पाया। 10 अप्रैल, 1968 को तत्कालीन राज्यपाल ने राष्ट्रपति से सिफारिश की कि राज्य की विधानसभा को भंग कर फिर से निर्वाचन करायें जायें क्योंकि राज्य में संवैधानिक तन्त्र विफल हो चुका है। इस प्रकार तत्कालीन भारतीय राष्ट्रपति ने राज्यपाल की सिफारिश कर 15 अप्रैल, 1968 को राज्य की विधान सभा को भंग कर राष्ट्रपति शासन लागू कर दिया। उत्तर–प्रदेश 5, 7, 9, व 20 फरवरी 1969 को मध्यावधि चुनाव हुए किन्तु इन चुनावों से भी वहॉ की स्थिति में विशेष परिवर्तन हुआ। किसी भी दल को पूर्ण बहुमत प्राप्त नहीं हो पाया जिसके कारण पुनः त्रिशंकु सरकार की सम्भावना बन गयी। उस समय कांग्रेस की स्थिति में वहॉ कुछ सुधार हुआ तो भारतीय क्रान्ति दल द्वितीय सबसे बड़ा दल उभर कर सामने आया। छोटे–छोटे राजनीतिक दलों की स्थिति समाप्त प्रायः हो गयी। निर्दलीय विधायकों की जो पूर्व में संख्या 38 थी वह भी घटकर 19 रह गयी थी।

तालिका 1 वर्ष 1967 चतुर्थ आम चुनाव के पश्चात्, विधान सभा विघटन के समय व मध्यावधि चुनाव वर्ष 1969 के बाद विभिन्न राजनीतिक दलों की स्थिति का विवरण

	दल का नाम	1967 के चुनाव पश्चात् की स्थिति	1968 में विघटन के समय स्थिति	1969 में मध्यावधि पश्चात् की स्थिति
1.	कांग्रेस	198	192	211
2.	जनसंघ	97	93	49
3.	संयुक्त सोशलिस्ट पार्टी	44	44	33
4.	साम्यवादी दल	14	13	04

5.	स्वतंन्त्र दल	12	08	05
6.	प्र0 सो0 पा0	11	11	03
7.	रिपब्लिकन दल	09	06	01
8.	साम्यवादी दल (मार्क्सवादी)	01	01	01
9.	भारतीय क्रान्ति दल	–	27	99
10.	निर्दलीय तथा अन्य	38	27	19
	कुल	424	422	425

उपरोक्त तालिका से यह विदित होता है कि उस समय उत्तर–प्रदेश में मध्यावधि चुनाव के दौरान कांग्रेस सबसे बड़े राजनीतिक दल के रुप में उभर कर सामने आया था। जिसके सर्वमान्य दलीय नेता उस समय चन्द्रभानु गुप्त चुने गये यद्यपि उनके स्पष्ट बहुमत प्राप्त नहीं था तथापि दल बदल का पुराना हथकन्डा अपनाकर वह राज्य के मुख्यमंत्री पद पर आसीन हो गये थे। इस मध्यावधि निर्वाचन में कांग्रेस के पश्चात् भारतीय क्रान्ति दल चौ0 चरण सिंह के नेतृत्व में दूसरी सबसे बड़ी पार्टी उभरकर सामने आयी थी। वर्ष 1969 में की आपसी वैचारिक भिन्नता के कारण कांग्रेस दल दो गुटों में विभक्त हो गया। एक संगठन कांग्रेस तथा दूसरा संगठन इन्दिरा कांग्रेस के नाम से जाना गया। जिससे तत्कालीन मुख्यमंत्री चन्द्रभानु गुप्त की सरकार को अल्पमत में होने के कारण 10 फरवरी 1970 को अपना त्यागपत्र देना पड़ा था।

भारतीय क्रान्ति दल, कांग्रेस संगठन, जनसंघ, स्वतन्त्र और संयुक्त सोशलिस्ट जैसी सभी पार्टियॉ फिर से गठबन्धन की सरकार बनाने हेतु प्रोत्साहित हुई तथा त्रिभुवन नरायन सिंह का अपना नेता चुनकर राज्यपाल से संविद सरकार निर्मित करने की मांग की तब टी0 एन0 सिंह जो किसी भी सदन के सदस्य नहीं थे उनको मुख्यमंत्री पद की शपथ दिलायी गयी उस समय तत्कालीन राज्यपाल के समक्ष किसी भी प्रकार का अन्य विकल्प नहीं था क्योंकि 420 सीटों में संविद सरकार के पक्ष में 246 सदस्य थे। इस अवधि का सबसे रोचक तथ्य यह रहा कि तत्कालीन मुख्यमंत्री त्रिभुवन नरायन सिंह का 6 माह के भीतर विधायक दल के किसी भी सदन का सदस्य बनना अनिवार्य था लेकिन वह मनीराम विधान सभा क्षेत्र से उप–चुनाव में पराजित हो गयें। इस प्रकार उत्तर–प्रदेश में गठबन्धन सरकारें बनती चली गयी तथा अपना कार्यकाल पूर्ण किये बिना ही उनका सत्ता से आना जाना लगा रहा। लोकसभा के मार्च,1971 के चुनावों ने केंन्द्रीय राजव्यवस्था में एक नये अध्याय का सूत्रपात किया। वहॉ कांग्रेस एक छत्रीय दल के रुप में उभर कर आयी इसके साथ ही साथ राज्यों की राजनीति में भी परिवर्तन आया। पांचवी लोकसभा निर्वाचन तथा मार्च,1972 के राज्य विधान सभा चुनाव में कांग्रेस की सफलता से जनता में यह आशा जागी थी कि शायद दल बदल की बीमारी कुछ कम होगी किन्तु स्थिति में किसी भी प्रकारक सुधार नहीं हुआ दल–बदल की प्रक्रिया चलती रही। जून, 1977 में उत्तर–प्रदेश विधान सभा के चुनाव सम्पन्न हुए तथा इस चुनाव में कांग्रेस को भारी नुकसान उठाना पड़ा था। 425 की सीट वाले सदन में कांग्रेस को मात्र 46 सीटों पर ही सन्तोष करना पड़ा था जबकि जनता दल के पक्ष में 351 सीटें आयी। जिस तरह भारतीय मतदाताओं ने वर्ष 1977 को धराशायी कर दिया था। उसी तरह वर्ष 1980 में उन्हीं मतदाताओं ने उस वर्ष जनता पार्टी को नकार दिया था।

1967 के चतुर्थ आम चुनाव बाद भारत तीव्र गति के साथ प्रान्तीय एवं क्षेत्रीय दलों की उत्पत्ति एवं विकास हुआ जो शीघ्र ही राज्यों की राजनीति में सक्रिय हो गए जिन्होंने भारतीय राजनीति की एक नए मोड़ पर खड़ा कर दिया। भारतीय संविधान निर्माण के समय भारतीय संविधानविद्वों ने हर सम्भव प्रयास किया है कि भारत में कोई भी शासक निरंकुश न हो जाए जिससे जनता के अधिकारों का हनन हो। हमारे संविधान में कोई भी अनुच्छेद ऐसा नहीं है कि भारतीय शासक को निरंकुश होने की स्वतन्त्रता प्रदान करें परन्तु भारतीय नेताओं ने अपने कृत्यों से यह सिद्ध किया है। कि यदि भारत के संविधान में जरा भी निरंकुश होने की गुंजाइश होती तो कभी का लोकतन्त्र,निरंकुशतन्त्र से बदल गया होता क्योंकि भारत के लगभग सभी नेताओं ने अपने तथा अपनी आने वाली नस्ल के बारे में सोचा है देश अथवा जनता के बारे में नहीं। कांग्रेस दल का नेतृत्व जब तक कुशल हाथों में रह तब तक कांग्रेस का गुटीय आधार तथा राजनीतिक दलों में प्रतियोगिता भी नहीं उभर पाई और जनता का भी कांग्रेस में अटूट विश्वास रहा। भारतीय संघ के सबसे बड़े राज्य उत्तर– प्रदेश में भी 1967 तक कांग्रेस दल का ही प्रभुत्व रहा। कांग्रेस एक दलीय सरकार के रुप में कार्य करती रही। सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनाव पश्चात् उत्तर–प्रदेश की राजनीतिक व्यवस्था एवं दलीय स्थिति का प्रारुप ही बदल गया। 1971 के लोकसभा चुनाव ने प्रधानमंत्री को बेताज का बादशाह बना दिया कांग्रेस दल को मिली अपार सफलता ने प्रधानमंत्री इन्दिरा गॉधी की शक्ति को इतना बढ़ावा दिया कि खुद श्रीमती इन्दिरा गॉधी के मंत्रिमण्डल के सदस्यों की स्थिति की सहयोंगियों के एक समूह के रुप में बना दिया जिनका उद्देश्य सिर्फ मंत्रिमण्डल को शोभा बनाना रहा था। प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गॉधी राज्यों में अपनी मनमानी करने लगी। सन् 1952 से 1967 के बीच समाजवादी नेताओं ने अपनी बढ़ती ताकत का तो परिचय दिया परन्तु समाजवादी दल की टूट फूट तथा दल में आपसी खींचतान ने खुद समाजवादी आन्दोंलन को ही नुकसान पहुॅचाया जिसका लाभ उठाकर श्रीमती इन्दिरा गॉधी बेताज का बादशाह बनी। एक दलीय व्यवस्था का प्रभाव उत्तर–प्रदेश ही नहीं सम्पूर्ण भारत पर पड़ा है। एक दलीय सरकार के कृत्यों के कारण ही उत्तर–प्रदेश सहित सम्पूर्ण भारत में अनेक दलों की उत्पत्ति हुई, भारतीय राजनीति को एक नई दिशा मिली, बाहुबल, भुजाबल तथा भ्रष्टाचार जैसी बुराईयॉ पैदा हुई। एक दलीय व्यवस्था को अन्त और बहुदलीय व्यवस्था के प्रारम्भ में अनेक ऐसे दोषों ने जन्म लिया जा आज भी भारत की राजनीति में विद्यमान है।

प्रसिद्ध सामाजिक विश्लेषक और बी0 एच0 यू0 के प्रो0 डॉ0 सोहन यादव कहते है कि अपने दुश्मन के नाश के लिए तथा राजनीतिक स्वार्थ के लिए राजनीतिक तो शैतान से भी हाथ मिलाने में नही चूकते माफिया, तो फिर भी इन्सान है। राजनीतिक दलों को लोकतन्त्र रुपी गाड़ी के पहिए कहा गया है जिसके माध्यम से लोकतन्त्र की गाड़ी को चलाया जाता है और जनता के हितों को सुरक्षित रख लोकतन्त्र को लोक–कल्याणकारी बनाया जाता है। बिना राजनीतिक दलों के लोकतन्त्र की गाड़ी नहीं चल सकती। लोकतन्त्र के लिए एक दलीय व्यवस्था, द्वि–दलीय व्यवस्था तथा बहु–दलीय किसी का भी होना आवश्यक है। एक–दलीय अथवा बहु–दलीय सरकार तथा गठबन्धन की सरकार तब सुचारु रुप से नहीं चल सकती जब तक राजनीतिक दलों की मनोवृत्ति में परिवर्तन न किया जाए यदि राजनीतिक दलों का आचरण और निर्णय पक्षपातपूर्ण व दुर्गन्ध फैलाने वाले रहे तो राजनीतिक व्यवस्था

भी वैसी ही होगी इसके लिए राजनीतिक दलों में आये दोषों को दूर करना होगा तभी एकदल एवं गठबन्धन की सरकार, सरकार सही एवं सुचारु रुप से चल सकेगीं। क्योंकि आज के जो राजनीतिक दल है उनसे तो ऐसा प्रतीत होता है कि भारत में एक दलीय व्यवस्था हो या बहु–दलीय जो राजनीति में दोष व्याप्त है वह और अधिक उग्र ही होंगे। अतः आवश्यकता है तो राजनीतिक दलों के रवैये में सुधार की जब तक राजनीतिक दलों की मनोस्थिति नहीं सुधरेगी तब तक बहु–दलीय एवं एक दलीय कोई भी व्यवस्था हो, राज्य को उचित शासन नहीं दे सकती। उत्तर–प्रदेश की राजनीतिक व्यवस्था में दलीय व्यवस्था दिशाहीन दिखाई पड़ती है। जिसमें सत्ता पक्ष एवं विपक्ष दोनों की से ही उत्तर–प्रदेश की राजनीति प्रभावित रही है तथा एक–दलीय एवं बहु–दलीय दोनों व्यवस्थाओं में उत्तर–प्रदेश भारतीय राजनीति का केंन्द्र बिन्दु रहा। एक–एक दल से कई कई गुट बने तथा एक दूसरे की टांग खींचते रहे है असन्तुष्ट सदस्यों ने मंत्रिमण्डल को गिराने में अपनी अहम भूमिका निभाई है। उत्तर–प्रदेश में भले ही 2007 के चुनावों में स्पष्ट बहुमत प्राप्त स्थिर सरकार दी हो परन्तु व्यवहार में राजनीतिक दलों द्वारा लोकतान्त्रिक मान्यताओं के अनुरुप आचरण द्वारा ही संसदीय लोकतंत्र को सफल बनाया जा सकता है। भारत में क्षेत्रीय में दलों के उद्भव एवं विकास ने कांग्रेस की आन्तरिक फूट में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। कांग्रेस के अधिकतर असन्तुष्ट नेताओं ने ही क्षेत्रीय दलों का निर्माण किया है। कांग्रेस की टूट का जो सूत्रपात हुआ तथा उससे जो घटनाएँ घटीं कि किसी भी देश के लिए शर्मशार करने वाली घटनाएँ थी। भारत में क्षेत्रीय दलों की उत्पत्ति में राजनीतिक स्वार्थ की अहम भूमिका रही है। गठबन्धन की सरकारें जब निर्मित हुई तो क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक स्तर के दलों ने भी अपना महत्व समझा क्योंकि क्षेत्रीय एवं प्रादेशिक दलों के सहयोग से सरकारें बनने लगी जब यह दल सरकार में भागींदारी करने लगे तो इन्हें अहसास हुआ कि इन्हें भी समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभानी होगी। अतः यह भी सरकार की जिम्मेदारी निभा सकते है।

सन्दर्भ

1. झॉ, डॉ0 किरन : भारतीय राज व्यवस्था कॉलेज बुक डिपो, वर्ष 1988
2. मलिक, सत्यपाल : उत्तर प्रदेश में संविद राजनीति संवैधानिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान, नयी दिल्ली, वर्ष 1972
3. कश्यप, सुभाष : दलबदल और राज्यों की राजनीति, मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, वर्ष 1970
4. द्विवेदी, एस0 के0 : उत्तर–प्रदेश में विधानसभा का कार्य संचालन सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, वर्ष 1984
5. जायसवाल, रामकृष्ण : भारतीय राज्यों में शासन एवं राजनीति,शान्ति प्रकाशन, फैजाबाद, वर्ष 1994
6. जैन, सी0 के0 : भारत में संसद और राज्य विधान मण्डल, एलाईड पब्लिशर्स, दिल्ली
7. मलिक सत्यपाल : उत्तर–प्रदेश में संविद राजनीति, संवैधानिक एवं संसदीय अध्ययन संस्थान, नयी दिल्ली, वर्ष 1972